International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(5): 95-99

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(5): 95-99
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 17-07-2021
Accepted: 29-08-2021

हिम्मत कुमार खटीक
शोधार्थी संस्कृत विभाग विश्वविद्यालय सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी महाविद्यालय मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
हिम्मत कुमार खटीक
शोधार्थी संस्कृत विभाग विश्वविद्यालय सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी महाविद्यालय मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान, भारत

श्रीमद्भागवत पुराण में वर्णित चारों आश्रमों व चारों पुरुषार्थ वाली जीवन पद्धति

हिम्मत कुमार खटीक

प्रस्तावना

प्राचीन समय में सभी नीति व नियम निर्धारित थे, धर्म के अनुरूप सभी कार्यों को संपादित किया जाता था तथा उसी के अनुसार जीवन दर्शन था । जीवन चार आश्रमों ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रमए वानप्रस्थ आश्रम और सन्यास आश्रम में तथा जीवन का लक्ष्य चार पुरुषार्थ धर्मए अर्थए काम और मोक्ष में विभक्त था जिससे जीवन जीने की रीति.नीति एवं लक्ष्य स्पष्ट था परंतु वर्तमान समय में इन नीति. नियमों का उल्लंघन हुआ हैए फल स्वरुप इस आधुनिक युग में रीति. नीति एवं लक्ष्य निर्धारित नहीं होने से समाज पथभ्रष्ट एवं विकृत सा हो गया है ।

चारों आश्रमों के जो आदर्श होते थे वह सब भंग हो चुके हैं, युवा ब्रह्मचर्य से दूर होकर कुसंस्कृति में फंस चुके हैं तथा गृहस्थ जीवन भी नीति.नियमों के विपरीत कलहयुक्त व अशांत हो चुका है तथा वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम का वर्णन सिर्फ साहित्य में दृष्टिगोचर होता है तथा धर्म अर्थ के मार्ग पर नजर आ रहा है उसने व्यवसाय का रूप ले लिया है व अर्थ पथभ्रष्ट होकर कुनीति से कामना पूर्ति में लगा हुआ है, अर्थ ही जीवन का लक्ष्य हो गया है व काम सिर्फ विकारों में सिमट गया है तथा मोक्ष चार्वाकनीति के कारण ओझल हो गया है। खाओ. पियो और मौज करो की नीति ने आध्यात्मिक सुख से उत्पन्न मोक्ष को विलुप्त कर दिया है।

श्रीमद्भागवत पुराण में चारों आश्रमों व चारों पुरुषार्थों के महत्व को बताते हुए उनका विस्तृत वर्णन किया गया है तथा चारों आश्रमों व चारों पुरुषार्थों के लिए साधारण धर्म यह बताया गया है कि मन, वाणी और शरीर से किसी की हिंसा न करेंए सत्य पर दृढ़ रहेए चोरी न करेंए कामए क्रोधए लोभ से बचें और जिन कामों के करने से समस्त प्राणियों की प्रसन्नसा हो और उनका भला हो वही करें ।.

अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता ।
भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः ॥ [1]

ब्रह्मचर्य आश्रम

वर्तमान आधुनिक जीवन में बाल्यावस्था व युवावस्था में संस्कारों के पतन के साथ मर्यादाओं का उल्लंघन व चरित्रहीनता का वर्धन हुआ है, इन दुर्गणों से युक्त समस्याओं के समाधान हेतु प्राचीन भारतीय परंपरा में गुरुकुल पद्धति के माध्यम से बाल्यावस्था से युवावस्था पर्यंत ब्रह्मचर्य आश्रम के अंतर्गत नवयुवको में सारे संस्कारों का सिंचन कर उसे बलवानए चरित्रवान, गुणगान, विद्यावान मनाया जाता था ताकि वह अपनी पारिवारिक व सामाजिक मर्यादाओं का पालन करते हुए समाज में सुव्यवस्थित व संस्कारित जीवन यापन कर सकें।

ब्रह्मचर्य आश्रम में बालक को पवित्रता के साथ गुरू आज्ञा पालन करने व उचित आचरण के साथ योगाभ्यास व संयम एवं संतोष का पाठ पढ़ाया जाता था [2] तथा आध्यात्मिक चिंतन के अंतर्गत ब्रह्मचारी को "सभी प्राणियों में परमात्मा विराजमान हैं" ऐसी भावना रखने की शिक्षा दी जाती थी.

अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेषु मां परम् ।
अपृथग्धीरुपासीत ब्रह्मवर्चस्व्यकल्मषः ॥ [3]

ऐसा ब्रह्मचारी सचमुच ब्रह्म तेज से सम्पन्न हो जाता है और उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। उसे चाहिये कि अग्नि, गुरु, अपने शरीर और समस्त प्राणियों में मेरी ही उपासना करे और यह भाव रखे कि मेरे तथा सबके हृदयमें एक ही परमात्मा विराजमान हैं।

गृहस्थाश्रम

आधुनिक समय में गृहस्थजीवन व्यक्तिगत स्वार्थ, असंयम और भौतिकवादी दृष्टिकोण के कारण कलहयुक्त हो चुका है तथा इसी कारण समाज में अंतर्द्वंद, अवसाद, हिंसा व संबंध-विच्छेद जैसी समस्याएं विकराल रूप धारण कर रही है। पौराणिक समय में गृहस्थआश्रम को विशिष्ट सम्मान प्राप्त था क्योंकि गृहस्थाश्रम के द्वारा ही सभी आश्रमों को आश्रय प्राप्त होता था।

श्रीमद्भागवत पुराण में गृहस्थआश्रम के संबंध में महर्षि कश्यप का कथन है कि-

सर्वाश्रमानुपादाय स्वाश्रमेण कलत्रवान्।
व्यसनार्णवमत्येति जलयानैर्यथार्णवम्॥
यामाहुरात्मनो ह्यर्धं श्रेयस्कामस्य मानिनि।
यस्यां स्वधुरमध्यस्य पुमांश्चरति विज्वरः॥
यामाश्रित्येन्द्रियारातीन्दुर्जयानितराश्रमैः।
वयं जयेम हेलाभिर्दस्यून्दुर्गपतिर्यथा॥ [4]

जिस प्रकार जहाजपर चढ़कर मनुष्य महासागर को पार कर लेता है, उसी प्रकार गृहस्थाश्रमी दूसरे आश्रमों को आश्रय देता हुआ अपने आश्रम द्वारा स्वयं भी दुःखसमुद्र के पार हो जाता है। मानिनि **!** स्त्री को तो त्रिविध पुरुषार्थ की कामना वाले पुरुष का आधा अंग कहा गया है। उसपर अपनी गृहस्थी का भार डालकर पुरुष निश्चिन्त होकर विचरता है। इन्द्रियरूप शत्रु अन्य आश्रमवालों के लिये अत्यन्त दुर्जय हैं**;** किन्तु जिस प्रकार किले का स्वामी सुगमता से ही लूटनेवाले शत्रुओं को अपने अधीन कर लेता है, उसी प्रकार हम अपनी विवाहिता पत्नी का आश्रय लेकर इन इन्द्रियरूप शत्रुओं को सहज में ही जीत लेते हैं।

समसामयिक समय में गृहस्थी भौतिक सुख सुविधा प्राप्त करने हेतु प्रयत्नशील रहता है तथा इन्हीं भौतिक साधनों की प्राप्ति हेतु उसे अनेक दुःखो का सामना करना पड़ता हैं। गृहस्थी में यह धारणा होती है कि भौतिक साधनों की प्राप्ति द्वारा में सुखी हो सकता हूं परंतु श्रीमद्भागवत पुराण में गृहस्थी द्वारा संतोष वृत्ति धारण करना ही सुख का आधार है।-

सन्तुष्टस्य निरीहस्य स्वात्मारामस्य यत् सुखम्।
कुतस्तत् कामलोभेन धावतोऽर्थेहया दिशः॥
सदा सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः।
शर्कराकण्टकादिभ्यो यथोपानत्पदः शिवम्॥
सन्तुष्टः केन वा राजन्न वर्तेतापि वारिणा।
औपस्थ्यजैह्व्यकार्पण्याद् गृहपालायते जनः॥ [5]

जो सुख अपनी आत्मा में रमण करने वाले निष्क्रिय सन्तोषी पुरुष को मिलता है, वह उस मनुष्य को भला कैसे मिल सकता है, जो कामना और लोभ से धन के लिये हाय-हाय करता हुआ इधर-उधर दौड़ता फिरता है। जैसे पैरों में जूता पहन कर चलनेवाले को कंकड़ और काँटों से कोई डर नहीं होता- वैसे ही जिसके मन में सन्तोष है, उसके लिये सर्वदा और सब कहीं सुख-ही-सुख है, दुःख है ही नहीं। युधिष्ठिर**!** न जाने क्यों मनुष्य केवल जलमात्र से ही सन्तुष्ट रहकर अपने जीवन का निर्वाह नहीं कर लेता। अपितु रसनेन्द्रिय और जननेन्द्रिय के फेर में पड़कर यह बेचारा घर की चौकसी करने वाले कुत्तेके समान हो जाता है।

श्रीमद्भागवत पुराण में यह भी कथन है कि गृहस्थ मनुष्य को धर्म, अर्थ और काम के लिए बहुत कष्ट नहीं उठाना चाहिए **;** बल्कि देश, काल और प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ मिल जाए उसी से संतोष करना चाहिए [6] तथा अपनी समस्त भोग- सामग्री को सभी प्राणियों में यथायोग्य बाँटकर ही अपने काम में लाना चाहिये। [7] गृहस्थाश्रम को जो लोग योग नहीं कर सकते उनको योग का फल देने वाला कहा गया है [8] तथा श्री कृष्ण भी दाम्पत्य- प्रेम को बढ़ाने वाले विनोदभरे वार्तालाप करते थे। [9] तथा उनको भी गृहस्थों के समान रहते हुए गृहस्थोचित धर्म का पालन करने वाला कहा गया है। [10] उन्होंने वेदोक्त धर्म का बार-बार आचरण करके लोगों को यह बात दिखला दी कि घर ही धर्म, अर्थ और काम-साधन का स्थान है।-

एवं वेदोदितं धर्ममनुतिष्ठन् सतां गतिः।
गृहं धर्मार्थकामानां मुहुश्चादर्शयत् पदम्॥ [11]

वानप्रस्थ आश्रम

वर्तमान समय में देखा जाता है कि मनुष्य युवावस्था पश्चात भी बुढ़ापे की अवस्था की ओर अग्रसर होते हुए भी अपना स्वार्थ, लोभ- लालच आदि कामनाएं नहीं छोड़ पाते हैं वें अपने कर्मों में लिप्त रहते हुए अपनी शारीरिक कामनाओं की पूर्ति में लगे रहते हैं। फल स्वरुप अनेक शारीरिक एवं मानसिक रोगों से ग्रसित हो जाते हैं।

श्रीमद्भागवत पुराण में शरीर के साथ मन को भी निर्मल व पवित्र करने के लिए गृहस्थाश्रम के पश्चात वानप्रस्थ आश्रम का विवेचन किया गया है। वानप्रस्थ आश्रम में स्वार्थ भावनाओं से परे शान्त चित्त से वन में रहते हुए [12] तथा प्राकृतिक वस्तुओं से शरीर का निर्वहन करते हुए [13] तपस्यामय जीवन व्यतीत करने को कहा गया है।

वानप्रस्थ आश्रम का मुख्य उद्देश्य सांसारिक प्रपंच से दूर वन में रहकर, प्रकृति में जीवन निर्वाह करते हुए, तपस्यामय जीवन जीते हुए आध्यात्मिक सुख की अनुभूति प्राप्त करना है।

सन्यास आश्रम

वर्तमान समय में व्यक्ति मरते दम तक भी कामनाओं का त्याग नहीं कर पाता है फल स्वरुप दुखी होकर जीवन त्यागता है। श्रीमद्भागवत पुराण अन्तर्गत सन्यास आश्रम मैं इन सांसारिक कामनाओं के साथ ही लोक-परलोक को भी नरकों के समान .दुःखपूर्ण माना है तथा लोक-परलोक की कामनाओं के त्याग की बात कही गई है।-

यदा कर्मविपाकेषु लोकेषु निरयात्मसु।
विरागो जायते सम्यङ् न्यस्ताग्निः प्रव्रजेत्ततः॥ [14]

सन्यास आश्रम के अंतर्गत संग्रह के नाम पर सिर्फ लंगोट पहनने व भिक्षा के लिए कमण्डलु व एक दंड धारण करने का विधान है तथा सदा सत्य बोलने, मौन रहने व एकांत में विचरण करने व भिक्षा द्वारा जीवन निर्वाह करने एवं दिन में दूसरी बार भी खाने के लिए संग्रह नहीं करने तथा मोक्ष का विचार करते हुए इंद्रिय-विषयों से दूर रहने व इंद्रियों के संयम को मोक्ष कहा गया है। [15]

वर्तमान समय में व्यक्ति के पास अनेक भौतिक सुविधाओं के होते हुए भी इन्द्रिय में लोलुपता के कारण विषय- वासनाओं में लिप्त होकर दुखी हो रहा है लेकिन भागवत पुराण में सुख का आधार विषय- वासना में लिप्त होना नहीं है। इंद्रिय-संयम से व्यवस्थित जीवन यापन करते हुए, इन्द्रियों से परे, प्रकृति के वातावरण में रहते हुए, भोग-वासनाओं को त्याग कर इंद्रियातीत ज्ञान में निमग्न रहकर ही परम सुख प्राप्त किया जा सकता है इसीलिए चतुर्थ आश्रमों का विधान किया गया है।

चतुर्थ पुरुषार्थ

आधुनिक युग में मनुष्य मानवीय गुण त्याग कर, भौतिक वस्तुओं के द्वारा लौकिक सुखों को प्राप्त करने में उलझा हुआ है तथा लौकिक सुखों की प्राप्ति हेतु वह अनेक प्रकार के दुष्कृत्य, दुराचार, अनाचार, असत्य भाषण आदि द्वारा समाज में विकृति उत्पन्न कर रहा है। इसी कलिकाल की स्थिति का वर्णन श्रीमद्भागवत पुराण में भी उद्धृत किया गया है।-

ततश्चानुदिनं धर्मः सत्यं शौचं क्षमा दया।
कालेन बलिना राजन् नङ्क्षयत्यायुर्बलं स्मृतिः॥
वित्तमेव कलौ नृणां जन्माचारगुणोदयः।

धर्मन्यायव्यवस्थायां कारणं बलमेव हि ॥
दाम्पत्येऽभिरुचिर्हेतुर्मायैव व्यावहारिके।
स्त्रीत्वे पुंस्त्वे च हि रतिर्विप्रत्वे सूत्रमेव हि ॥
लिंगमेवाश्रमख्यातावन्योन्यापत्तिकारणम् ।
अवृत्त्या न्यायदौर्बल्यं पाण्डित्ये चापलं वचः ॥
अनाढ्यतैवासाधुत्वे साधुत्वे दम्भ एव तु ।
स्वीकार एव चोद्वाहे स्नानमेव प्रसाधनम् ॥ [16]

श्रीशुकदेवजी कहते हैं- परीक्षित् ! समय बड़ा बलवान् है; ज्यों-ज्यों घोर कलियुग आता जायगा, त्यों-त्यों उत्तरोत्तर धर्म, सत्य, पवित्रता, क्षमा, दया, आयु, बल और स्मरणशक्ति का लोप होता जायगा । कलियुग में जिसके पास धन होगा, उसी को लोग कुलीन, सदाचारी और सद्गुणी मानेंगे। जिसके हाथ में शक्ति होगी वही धर्म और न्याय की व्यवस्था अपने अनुकूल करा सकेगा । विवाह सम्बन्ध के लिये कुल-शील-योग्यता आदि की परख निरख नहीं रहेगी, युवक-युवती की पारस्परिक रुचि ही सम्बन्ध हो जायगा। व्यवहार की निपुणता सच्चाई और ईमानदारी में नहीं रहेगी; जो जितना छल-कपट कर सकेगा, वह उतना ही व्यवहारकुशल माना जायगा । स्त्री और पुरुष की श्रेष्ठता का आधार उनका शील-संयम न होकर केवल रतिकौशल ही रहेगा। ब्राह्मण की पहचान उसके गुण-स्वभाव से नहीं यज्ञोपवीत से हुआ करेगी। वस्त्र, दण्ड-कमण्डलु आदि से ही ब्रह्मचारी, संन्यासी आदि आश्रमियों की पहचान होगी और एक-दूसरे का चिह्न स्वीकार कर लेना ही एक से दूसरे आश्रम में प्रवेश का स्वरूप होगा। जो घूस देने या धन खर्च करने में असमर्थ होगा, उसे अदालतों से ठीक-ठीक न्याय न मिल सकेगा। जो बोलचाल में जितना चालाक होगा, उसे उतना ही बड़ा पण्डित माना जायगा । असाधुता की- दोषी होने की एक ही पहचान रहेगी-गरीब होना। जो जितना अधिक दम्भ । पाखण्ड कर सकेगा, उसे उतना ही बड़ा साधु समझा जायगा। विवाह के लिये एक-दूसरे की स्वीकृति ही पर्याप्त होगी, शास्त्रीय विधि-विधान की संस्कार आदि की कोई आवश्यकता न समझी जायेगी। बाल आदि सँवारकर कपड़े-लत्ते से लैस हो जाना ही स्नान समझा जायगा ।

समाज में व्याप्त उक्त दोषों के निराकरण हेतु भागवत पुराण में भौतिक सुख व आध्यात्मिक सुख में सामंजस्य स्थापित करने हेतु चतुर्थ पुरूषार्थ का विवेचन किया गया है। अर्थ और काम रूपी भौतिक सुख से धर्म व मोक्ष द्वारा आध्यात्मिक सुख की और प्रवृत्त किया गया है।

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते ।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः ॥
कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता ।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः ॥ [17]

धर्म का फल है मोक्ष। उसकी सार्थकता अर्थप्राप्ति में नहीं है। अर्थ केवल धर्म के लिये है। भोगविलास उसका फल नहीं माना गया है। भोगविलास का फल इन्द्रियों को तृप्त करना नहीं है, उसका प्रयोजन है केवल जीवननिर्वाह । जीवन का फल भी तत्त्वजिज्ञासा है। बहुत कर्म करके स्वर्गादि प्राप्त करना उसका फल नहीं है । तथा भागवत पुराण में धर्म, अर्थ, काम वही अच्छे माने हैं जिनसे सज्जनों को सुख मिले। [18]

धर्म

धृ धातु से निष्पण धर्म का तात्पर्य सद्भाव व सद्गुणों को धारण करने से हैं श्रीमद्भागवत पुराण में नारदजी द्वारा युधिष्ठिर को धर्म के तीस लक्षण कहे गये हैं इन तीस प्रकार के लक्षणों को धारण कर आचरण में लाना मनुष्य का परम धर्म माना गया है।-

सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः ।
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम् ॥
सन्तोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः ।
नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम् ॥
अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः ।
तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव ॥
श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः ।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ॥
नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः ।
त्रिंशल्लक्षणवानराजन्सर्वात्मा येन तुष्यति ॥ [19]

युधिष्ठिर! धर्मके ये तीस लक्षण शास्त्रों में कहे गये हैं– सत्य, दया, तपस्या, शौच, तितिक्षा, उचित अनुचित का विचार, मन का संयम, इन्द्रियों का संयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, समदर्शी महात्माओं की सेवा, धीरे-धीरे सांसारिक भोगों की चेष्य से निवृत्ति, मनुष्य के अभिमान पूर्ण प्रयत्नों का फल उलटा ही होता है- ऐसा विचार, मौन, आत्मचिन्तन, प्राणियों को अन्न आदि का यथायोग्य विभाजन, उनमें और विशेष करके मनुष्यों में अपने आत्मा तथा इष्टदेव का भाव, संतों के परम आश्रय भगवान् श्रीकृष्ण के नाम गुण-लीला आदि का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, उनकी सेवा, पूजा और नमस्कार; उनके प्रति दास्य, सख्य और आत्मसमर्पण- यह तीस प्रकार का आचरण सभी मनुष्यों का परम धर्म है। इसके पालन से सर्वात्मा भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥

इन सभी श्रेष्ठा चरणों के साथ ही मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म दिनों पर दया करना [20] तथा धर्म पालन हेतु मन, वचन, कर्म द्वारा किसी को भी कष्ट नहीं देना चाहिए। [21]

अर्थ

वर्तमान समय में द्वित्तीय पुरुषार्थ अर्थ का महत्व ही अधिक प्रतीत हो रहा है। अर्थ को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति अनर्थपूर्ण कार्यों को करने से भी नहीं हिचकिचाता है, धर्म का उपयोग भी धन कमाने हेतु किया जा रहा है जबकि श्रीमद्भागवत पुराण में कहा गया है कि अर्थ केवल धर्म के लिए हैं भोग विलास के लिए नहीं है। [22] तथा धन में आसक्त जीव समूह को तनिक भी शांति नहीं मिलती हैं।-

दुरत्ययेऽध्वन्यजया निवेशितो
रजस्तमः सत्त्वविभक्तकर्मदृक् ।
स एष सार्थोऽर्थपरः परिभ्रमन्
भवाटवीं याति न शर्म विन्दति ॥ [23]

यह जीव-समूह सुखरूप धन में आसक्त देश-देशान्तर में घूम-फिरकर व्यापार करने वाले व्यापारियों के दल के समान है। इसे माया ने दुस्तर प्रवृत्तिमार्ग में लगा दिया है; इसलिये इसकी दृष्टि सात्त्विक, राजस, तामस भेद से नाना प्रकार के कर्मों पर ही जाती है। उन कर्मों में भटकता-भटकता यह संसाररूप जंगल में पहुँच जाता है। वहाँ इसे तनिक भी शान्ति नहीं मिलती ।

श्रीमद्भागवत पुराण में कथन है कि धन का संग्रह उतना ही करना चाहिए जितने की आवश्यकता हो [24] व निरंतर परिश्रम, भय, चिंता और भ्रम से युक्त तथा सभी संबंधों में वैमनस्यता उत्पन्न करने वाले एवं पन्द्रह प्रकार के अनर्थ उत्पन्न करने वाले अर्थ को कल्याणकामी पुरुष द्वारा दूर से ही छोड़ देना चाहिए।-

अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये ।
नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमो नृणाम् ॥
स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः ।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥
एते पंचदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम् ।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥
भिद्यन्ते भ्रातरो दाराः पितरः सुहृदस्तथा ।
एकास्निग्धाः काकिणिना सद्यः सर्वेऽरयः कृताः ॥
अर्थेनाल्पीयसा होते संरब्धा दीप्तमन्यवः ।
त्यजन्त्याशु स्पृधो घ्नन्ति सहसोत्सृज्य सौहृदम् ॥ [25]

धन कमाने में, कमा लेने पर उसको बढ़ाने, रखने एवं खर्च करने में तथा उसके नाश और उपभोग में- जहाँ देखो वहीं निरन्तर परिश्रम, भय, चिन्ता और भ्रम का ही सामना करना पड़ता है। चोरी, हिंसा, झूठ बोलना, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, अहंकार, भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्द्धा, लम्पटता, जूआ और शराब- ये पन्द्रह अनर्थ मनुष्यों में धन के कारण ही माने गये हैं। इसलिये कल्याणकामी पुरुष को चाहिये कि स्वार्थ एवं परमार्थ के विरोधी अर्थनामधारी अनर्थ को दूर से ही छोड़ दे। भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र, माता-पिता, सगे-सम्बन्धी जो स्नेह-बन्धन से बँधकर बिलकुल एक हुए रहते हैं-सब-के-सब कौड़ी के कारण इतने फट जाते हैं कि तुरंत एक-दूसरे के शत्रु बन जाते हैं। ये लोग थोड़े-से धन के लिये भी क्षुब्ध और क्रुद्ध हो जाते हैं। बात-की-बात में सौहार्द सम्बन्ध छोड़ देते हैं, लाग-डाँट रखने लगते हैं और एकाएक प्राण लेने-देने पर उतारू हो जाते हैं। यहाँ तक कि एक दूसरे का सर्वनाश कर डालते हैं।

श्रीमद्भागवत पुराण में उक्त इतने सारे धन के दोष बताते हुए धन के अर्जन को मनुष्य की क्षुधा- पूर्ति तक सीमित रखा गया है।-

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥ [26]

मनुष्यों का अधिकार केवल उतने ही धन पर है, जितने से उनकी भूख मिट जाय। इससे अधिक सम्पत्ति को जो अपनी मानता है, वह चोर है, उसे दण्ड मिलना चाहिये। भागवत पुराण अनुसार अर्थ के संबंध में कहा जा सकता है कि स्वार्थवृत्ति को त्यागते हुए धर्म के अनुकूल व आवश्यकता अनुसार ही अर्थ का अर्जन करना चाहिए।

काम

तृतीय पुरुषार्थ काम को बताया गया है जिसका सामान्य तात्पर्य इन्द्रिय-सुख व कामवासना माना जाता है वर्तमान समय में कामवासना रूपी दुर्गुण अनेक अनर्थों का कारण बना हुआ हैं, कामवासना संबंधी वीडियो एवं अन्य सभी प्रकार की सामग्री इंटरनेट आदि संचार साधनों के द्वारा सभी वर्ग के पुरुषों, विशेषकर नव युवकों में मानसिक व शारीरिक विकृतियां उत्पन्न कर रहा है।

श्रीमद्भागवत पुराण में गृहस्थों के धर्म अनुकूल व संतानोत्पत्ति हेतु काम का उपयोग माना है परंतु काम की अत्यधिक लालसा का निषेध किया गया है इस संबंध में राजा ययाति की कथा वर्णित है जिसमें राजा ययाति कामेच्छा की पूर्ति हेतु अपने पुत्र की युवावस्था ले लेते हैं और अंत में काम में अतृप्त होकर अपने पुत्र को पुनः युवावस्था अवस्था लौटा देते हैं राजा ययाति का कथन है कि-

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
न दुह्यन्ति मनः प्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते॥
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥ [27]

पृथ्वी, में जितने भी धान्य (चावल, जौ आदि), सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं-वे सब-के-सब मिलकर भी उस पुरुष के मन को सन्तुष्ट नहीं कर सकते जो कामनाओं के प्रहार से जर्जर हो रहा है। विषयों के भोगने से भोगवासना कभी शान्त नहीं हो सकती। बल्कि जैसे घी की आहुति डालने पर आग और भड़क उठती है, वैसे ही भोगवासनाएँ भी भोगों से प्रबल हो जाती हैं।

श्रीमद्भागवत पुराण में काम के विषय में सौभरि ऋषि की कथा है जिन्होंने राजा मांधाता की पचास पुत्रियों से विवाह किया। सौभरि ऋषि गृहस्थी के सुख में रम गए और अपनी निरोग इंद्रियों से अनेक विषयों का सेवन करते रहे फिर भी जैसे घी की बूंदों से आग तृप्त नहीं होती वैसे ही उन्हें संतोष नहीं हुआ।-

एवं गृहेष्वभिरतो विषयान् विविधैः सुखैः।
सेवमानो न चातुष्यदाज्यस्तोकैरिवानलः॥ [28]

वर्तमान समय में मनुष्य सांसारिक सुख के पीछे भाग रहा है वह सांसारिक सुख की कामना में ही अनेक अनर्थकारी कार्य करता है जिससे समाज में विकृतियां उत्पन्न होती है, जबकि धर्म व अध्यात्म उच्च-आदर्शों की ओर प्रेरित करते हैं जिससे समाज में दान, दया, भ्रातृत्व व सद्भाव जैसे गुणों का वर्धन होता है।

मोक्ष

समसामयिक समय में अधिकांशतः व्यक्ति धार्मिक भावना व अध्यात्म से उत्पन्न सुख व उससे प्राप्त मोक्ष से अनभिज्ञ है। श्रीमद्भागवत पुराण सांसारिक सुख को निम्न व धर्म-अध्यात्म व भक्ति के द्वारा उत्पन्न सु:खानुभूति को श्रेष्ठ मानती हैं **I**

चतुर्थ पुरुषार्थों में मोक्ष जीवन का अंतिम लक्ष्य व उद्देश्य है। भागवत पुराण में मोक्ष हेतु भक्ति, सांख्ययोग, तत्व ज्ञान आदि का विवेचन किया गया है तथा ग्रंथ के आरंभ में भक्ति को ही मोक्ष दायिनी माना है।-

सत्यादित्रियुगे बोधवैराग्यौ मुक्तिसाधकौ।
कलौ तु केवला भक्तिर्ब्रह्मसायुज्यकारिणी॥ [29]

सत्य, त्रेता और द्वापर-इन तीन युगों में ज्ञान और वैराग्य मुक्ति के साधन थे; किन्तु कलियुग में तो केवल भक्ति ही ब्रह्मसायुज्य (मोक्ष) की प्राप्ति करानेवाली है।

कपिल मुनि अपनी माता देवकी के निवेदन करने पर उन्हें सांख्ययोग का उपदेश प्रदान कर उन्हें मोक्ष की अनुभूति करवाते है। कपिल मुनि के अनुसार आत्मदर्शन ज्ञान ही मोक्ष का कारण है और वही अंहकाररूप हृदयग्रन्थि का छेदन करने वाला है। [30] जिस तरह जल में प्रतिबिंबित सूर्य के साथ जल के शीतलता, चंचलता आदि गुणों का संबंध नहीं होता उसी प्रकार प्रकृति के कार्य शरीर में स्थित रहने पर भी आत्मा वास्तव में उसके सुख-दु:खादि कर्मों में लिप्त नहीं होता; क्योंकि वह स्वभाव से ही निर्विकार और निर्गुण है।-

प्रकृतिस्थोऽपि पुरुषो नाज्यते प्राकृतैर्गुणैः।
अविकारादकर्तृत्वान्निर्गुणत्वाज्जलार्कवत्॥ [31]

श्रीमद्भागवत पुराण में मोक्षार्थ असंगता का उपदेश किया गया है। [32] तथा कथन है कि मनुष्य शरीर में ही ऐसी बुद्धि है जो ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकती है। [33] एवं जीवन का मुख्य उद्देश्य मोक्ष ही है।-

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु याव-
न्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात्॥ [34]

यद्यपि यह मनुष्य शरीर है तो अनित्य ही- मृत्यु सदा इसके पीछे लगी रहती है। परन्तु इससे परमपुरुषार्थ की प्राप्ति हो सकती है; इसलिये अनेक जन्मोंके बाद यह अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य-शरीर पाकर बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि शीघ्र-से-शीघ्र, मृत्यु के पहले ही मोक्ष-प्राप्ति का प्रयत्न कर ले। इस जीवन का मुख्य उद्देश्य मोक्ष ही है। विषय- भोग तो सभी योनियों में प्राप्त हो सकते हैं, इसलिये उनके संग्रह में यह अमूल्य जीवन नहीं खोना चाहिये।

जीवन में मनुष्य सुख तो चाहता है मगर उसकी दौड़ भौतिक सुख की और होती है और इसी भौतिक सुख की चाह में वह सामाजिक मर्यादाओं का भी उल्लंघन कर जाता है तथा त्याग, सेवा, भ्रातत्व, सहयोग की भावना जैसे मानवीय मूल्यों को भूल जाता है। श्रीमद्भागवत पुराण में चतुर्थ आश्रम और पुरुषार्थ का विवेचन मानवीय मूल्यों से युक्त जीवन की प्रेरणा प्रदान करता है तथा भौतिक सुख से भी बढ़कर भक्ति भावना युक्त अनुभूति, धर्म से उत्पन्न में निश्वार्थता तथा आध्यात्मिक सुख से परिचित करवाता है, धर्म व अध्यात्म में निमग्न मनुष्य सामान्यतः अनैतिक कार्यों से परे रहते हुए मानवीय मूल्यों से युक्त सामाजिक उत्थान में सहायक होता है क्योंकी धर्म व अध्यात्म से उत्पन्न वृत्ति मानवीय मूल्यों की संवाहक होती हैं।

सन्दर्भ

1. श्रीमद्भागवत पुराण श्लोक 21, अध्याय 17, स्कंद 11
2. वही 22- 30 / 17/ 11
3. वही 32 / 17 / 11
4. वही 17-19/14/3
5. वही 16-18 / 15 / 7
6. वही 10 / 14 / 7
7. वही 11 / 14 / 7
8. वही 5 / 16 / 8
9. वही 58/ 60 / 10
10. वही 59 / 60 / 10
11. वही 28/ 90/10
12. वही 1 / 18 / 11
13. वही 2 / 18 / 11
14. वही 12 / 18 / 11
15. वही 15- 22 / 18 / 11
16. वही 1-5/2/12
17. वही 9-10/2/1
18. वही (28/5/10)
19. वही 8- 12/11 / 7
20. वही 26/ 27 / 4
21. वही 8 / 15 / 7
22. वही 9 / 2 / 1
23. वही 1 / 13 / 5
24. वही 27/19/8
25. वही 17- 21 / 23 / 11
26. वही 8 / 14 / 7
27. वही 13- 14/19/ 9
28. वही 48 / 6 / 9
29. वही 4 / 2 / भागवत महात्म्य
30. वही 2 / 26/3
31. वही 1 / 27 / 3
32. वही 51/6/9
33. वही 28/9 /11
34. वही 29/ 9 / 11